भगतसिंह जनअधिकार यात्रा

बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और जनता की लूट के ख़िलाफ़ !

रोज़गार, शिक्षा, चिकित्सा, आवास और जुझारू जनएकजुटता के लिए !

शिक्षा और रोज़गार
हमारा जन्मसिद्ध अधिकार

सहयोग राशि: 10 रुपये

हमारा देश एक अभूतपूर्व दौर से गुज़र रहा है। निजीकरण की नवउदारवादी नीतियों के दौर में जनता के लम्बे संघर्षों से हासिल सीमित जनवादी अधिकारों पर लगातार हमला बोला गया है और मोदी सरकार के 9 वर्षों में तो इसकी गति अभूतपूर्व रूप से बढ़ी है। जब भी छात्र-युवा रोज़गार व शिक्षा की माँग लेकर सड़कों पर उतरते हैं तो उन पर इस क़दर लाठियाँ बरसाई जाती हैं मानो वे कोई अपराधी या आतंकवादी हों। देश में **32 करोड़ बेरोज़गार** हैं और शिक्षा आम जनता की पहुँच से दूर की जा रही है, ऐसे में मोदी सरकार चाहती है कि देश के नौजवान मुँह पर ताला लगा कर बैठे रहें और "पकौड़े तलें"।

जिस अनुपात में समाज में जनवादी अधिकार छीने जा रहे हैं, उसी अनुपात में विश्वविद्यालयों/उच्च शिक्षण संस्थानों में भी जनवादी अधिकारों को ख़त्म किया जा रहा है। अब **नयी शिक्षा नीति** के ज़रिये मोदी सरकार शिक्षा को पूरी तरह बाज़ार के हवाले करने पर आमादा है। **नयी शिक्षा नीति** शिक्षा के क्षेत्र से सरकार की ज़िम्मेदारी और जवाबदेही को ख़त्म कर देगी, शिक्षा को देशी-विदेशी पूँजी के लूट के अड्डे में तब्दील कर देगी और शिक्षा के साम्प्रदायीकरण का रास्ता साफ़ कर देगी। एक तरफ़ शिक्षा लोगों की पहुँच से दूर होती जा रही है, वहीं दूसरी तरफ़ बेरोज़गारी अपने चरम पर है। हालत इतनी बदतर है कि भारतीय जॉब मार्केट अभी कोरोना के पहले के स्तर पर भी नहीं पहुँचा था कि मन्दी के और ज़्यादा गहराने के संकेत मिलने लगे हैं। दुनिया भर में छँटनी-तालाबन्दी का दौर चल रहा है। मुनाफ़े की गिरती औसत दर को रोकने के लिए पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े पब्लिक सेक्टर के मुनाफ़ा दे सकने वाले उपक्रमों को भी बेचा रहा है। ऐसे में क्या हम चुप बैठे रहें? शहीदेआज़म भगतसिंह इस देश के बहादुर नौजवानों के आदर्श हैं। उन्होंने कहा था कि अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखती है तो युवाओं का यह आवश्यक कर्तव्य ही नहीं बल्कि अधिकार बन जाता है कि ऐसी सरकार को बदल दें या समाप्त कर दें। आज भगतसिंह की इस बात का एक-एक शब्द हमारे सामने जलते हुए सवाल की तरह खड़ा है। क्या हम इस अन्याय को चुपचाप बर्दाश्त करते चले जायेंगे और देश की मेहनत और क़ुदरत को धन्नासेठों, भ्रष्टाचारियों के हाथों नीलाम होने देंगे?

छात्रों-युवाओं के लिए इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का पहला क़दम है शिक्षा और रोज़गार के अधिकार के लिए संघर्ष करना। हमें कह देना चाहिए कि शिक्षा और रोज़गार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे हर क़ीमत पर लेकर रहेंगे। हमारा मानना है कि **शिक्षा और रोज़गार देश के हर नागरिक का मूलभूत अधिकार है**

और इसे संविधान में संशोधन कर मूलभूत अधिकार में शामिल किया जाना चाहिए। हर किसी को समान एवं नि:शुल्क शिक्षा देना सरकार की ज़िम्मेदारी है। **भगतसिंह जनअधिकार यात्रा** की एक प्रमुख माँग यह है कि सबको समान व नि:शुल्क शिक्षा और सभी को रोज़गार की गारण्टी दी जाये। यदि सरकार जनता की इन बुनियादी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकती तो आख़िर वह है किसलिए? धन्नासेठों, अमीरज़ादों, और दूसरों की मेहनत पर ऐय्याशी करने वाले परजीवियों की तिजोरियाँ भरने के लिए?

वर्तमान समय में शिक्षा के हालात

जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज ही अक्ल के अन्धे बनाने की कोशिश की जा रही है। इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें ख़ुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं, जो सिर्फ़ क्लर्की करने के लिए हासिल की जाये।

— शहीदे-आज़म भगतसिंह

दोस्तो, हमारा यह समय शिक्षा पर हो रहे अभूतपूर्व हमले का साक्षी है। वैसे तो शासक वर्ग द्वारा शिक्षा के बाज़ारीकरण की मुहिम काफ़ी लम्बे समय से चल रही है लेकिन मौजूदा फ़ासीवादी दौर में शिक्षा के बाज़ारीकरण और साम्प्रदायीकरण की रफ़्तार अद्वितीय है। शिक्षा का सरकारी तन्त्र योजनाबद्ध तरीके से नीतियाँ बनाकर चौपट किया जा रहा है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा को बाज़ारू माल बना दिया गया है। जिसके पास पैसा है वे बेहतर स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व तकनीकी शिक्षण संस्थानों तक पहुँच रखते हैं। जिनके पास पैसा नहीं है वे अशिक्षित रहकर या स्कूल से ड्रॉपआउट होकर अकुशल या अर्द्धकुशल मज़दूरों की जमात में शामिल होने या ज़्यादा से ज़्यादा आईटीआई या पॉलीटेक्निक से शिक्षित होकर कुशल मज़दूरों की जमात में शामिल होने और ठेका प्रथा के तहत खटने के लिए बाध्य है। शिक्षा पर होने वाले सरकारी ख़र्च में कटौती के मामले में मोदी सरकार ने पिछली सभी सरकारों को बहुत पीछे छोड़ दिया है।

साल दर साल शिक्षा बजट में कटौती

"मैं चाहता हूँ, ऊँची-से-ऊँची तालीम सबके लिए मुआफ़ हो; ताकि ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी ऊँची-से-ऊँची लियाकत हासिल कर सके और ऊँचे-से-ऊँचे ओहदे पा सके। युनिवर्सिटी के दरवाजे मैं सबके लिये खुले रखना चाहता हूँ। सारा ख़र्च गवर्नमेण्ट पर पड़ना चाहिए। मुल्क को तालीम की उससे कहीं ज्यादा ज़रूरत है, जितनी फ़ौज की।"

— प्रेमचन्द

महान साहित्यकार प्रेमचन्द आज़ादी से पहले एक ऐसे समाज का ख़्वाब देख रहे थे जिसमें शिक्षा के सामने पैसे की दीवार ना खड़ी हो। लेकिन आज़ादी के साढ़े सात दशकों में शिक्षा के सामने न केवल पैसे की दीवार है बल्कि हर गुज़रते साल के साथ यह दीवार ऊँची होती जा रही है। शिक्षा पर होने वाले सरकारी ख़र्चों में बेतहाशा कटौती की जा रही है। आज़ादी के बाद बने अधिकांश आयोगों की सिफ़ारिशों और शिक्षा नीतियों में शिक्षा पर कुल सरकारी ख़र्च, सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 6 फ़ीसदी करने का वायदा किया जाता रहा है। लेकिन यह केवल जुमला ही साबित हुआ है। केन्द्र सरकार द्वारा 1990-91 में शिक्षा पर ख़र्च जीडीपी के 1.4 फ़ीसदी से घटाकर 2023-24 में मोदी सरकार द्वारा 0.37 फ़ीसदी कर दिया गया है। इसका नतीजा होगा स्कूलों, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों का निजीकरण और अधिक से अधिक सरकारी शिक्षण संस्थानों को स्ववित्तपोषित बनाकर उसमें फ़ीसें इतनी बढ़ा देना कि आम आदमी के बेटे-बेटियाँ उसमें पढ़ने का सपना भी न देख पायें। मोदी सरकार ने शिक्षा बजट में कटौती के मामले में पूर्ववर्ती सभी सरकारों को मीलों पीछे छोड़ दिया है। हाल ही में मोदी सरकार की ओर से अपने दूसरे कार्यकाल का आख़िरी पूर्ण बजट पेश किया गया। **'इनोवेशन', 'डेवलपमेण्ट', 'गरीब कल्याण' आदि लच्छेदार शब्दावली की चाशनी में लपेट कर परोसा गया यह बजट एक जनविरोधी, छात्र-युवा विरोधी दस्तावेज़ है।** ऊपरी तौर पर देखने पर शिक्षा बजट 1.04 लाख करोड़ से बढ़कर 1.12 लाख करोड़ हो गया है। लेकिन जैसे ही इस बढ़ोत्तरी को महँगाई की दर से प्रतिसन्तुलित करते हैं वैसे ही मोदी सरकार द्वारा की गयी आँकड़ों की बाज़ीगरी साफ़ हो जाती है। वास्तव में मोदी सरकार द्वारा शिक्षा बजट में कटौती की गयी है। इसको इस रूप में भी समझा जा सकता है कि वित्त वर्ष 2013-14 में शिक्षा पर केन्द्र सरकार का ख़र्च जीडीपी का महज़ 0.63% था। जो मोदी सरकार के इन 9 वर्षों में कम होकर वित्तीय वर्ष 2022-23 में 0.37% पहुँच चुका है।

इसके अलावा, 2013-14 से 2022-23 तक नौ वर्षों के दौरान एक आम नियम के तौर पर मोदी सरकार द्वारा शिक्षा पर वास्तविक ख़र्च बजट अनुमानों से कम ही रहा है। 2020-21 में बजट की तुलना में वास्तविक ख़र्च 15,092.1 करोड़ रुपये कम था। इस प्रकार देखें तो एक तरफ़ मोदी सरकार जीडीपी की तुलना में शिक्षा बजट में लगातार कटौती कर रही है तो वहीं दूसरी ओर जो बजट शिक्षा क्षेत्र के लिये आबण्टित किया जाता है, तमाम बन्दरबाँट के बाद भी उसे ख़र्च नहीं किया जा रहा है। इतना ही नहीं, मोदी सरकार बजट की कमी का रोना रोकर स्कूलों को बन्द भी कर रही है। विश्वविद्यालयों में स्ववित्तपोषित कोर्स लाने के साथ-साथ पूरे शिक्षा तन्त्र को देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपने की तैयारी हो रही है, जिसका जीता-जागता दस्तावेज़ **नयी शिक्षा नीति-2020** है।

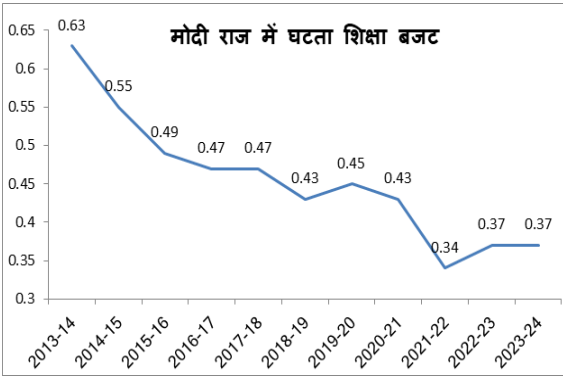

उपरोक्त ग्राफ़ मोदी सरकार के शिक्षा सुधार के तमाम दावों की पोल खोलने के लिए काफ़ी है। शिक्षा पर राज्य सरकारों के ख़र्च को भी जोड़ लिया जाये तो यह आँकड़ा बमुश्किल जीडीपी के तीन-साढ़े तीन फ़ीसदी पहुँचता है। लगातार घटते बजट ने पहले से लाचार शिक्षा तन्त्र को और भी दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया है।

एक तरफ़ मोदी सरकार द्वारा शिक्षा बजट में कटौती की जा रही है वहीं दूसरी तरफ़ शिक्षा का तेज़ी से भगवाकरण किया जा रहा है।

फ़ासिस्टों द्वारा इतिहास से दुराचार और शिक्षा के साम्प्रदायीकरण की मुहिम

"जिस धरती पर हर अगले मिनट एक बच्चा भूख या बीमारी से मरता हो वहाँ पर शासक वर्ग की दृष्टि से चीज़ों को समझने के लिए लोगों को प्रशिक्षित किया जाता

है। लोग व्यवस्था को देशभक्ति से जोड़ लेते हैं और इस तरह व्यवस्था का विरोधी एक देशद्रोही या विदेशी एजेण्ट बन जाता है। जंगल के क़ानून को पवित्र रूप दे दिया जाता है, ताकि पराजित लोग अपनी हालत को नियति समझ बैठें।''

— एदुआर्दो गालियानो

कहा जाता है कि शिक्षा सभ्य समाज की रीढ़ होती है। समाज और व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा उन तमाम कारकों में से एक महत्वपूर्ण कारक है जो नयी पीढ़ी को वैज्ञानिक और तार्किक चेतना, संवेदनशीलता और इतिहासबोध से लैस करती है, मानव समाज की कठिन, उतार चढ़ाव भरी यात्रा से नयी पीढ़ी को परिचित कराती है और इस प्रक्रिया में नयी पीढ़ी को लूट, शोषण और अन्याय के खिलाफ़ लड़ने के लिए उत्प्रेरक का काम करती है। इस प्रकार सच्ची शिक्षा का लक्ष्य होता है युवाओं को न्याय, समानता, जनवाद के उसूलों से लैस करना और उन्हें जाति-धर्म के झगड़ों को त्यागने की चेतना देना। लेकिन आज पाठ्यक्रमों में बदलाव कर मोदी सरकार युवाओं को दंगाइयों की उन्मादी भीड़ में तब्दील करना चाहती है ताकि वह अपनी 'बाँटों और राज करो' की नीति को सफल बना सके। मिथकों को इतिहास और इतिहास को मिथक बनाया जा रहा है। इस तरह शिक्षा आज के शासक वर्ग के हाथों में क़ैद होकर लूट, शोषण, दमन और अन्याय के पक्ष में जनमत तैयार करने का भी एक सशक्त माध्यम बन गयी है। शासक वर्ग अपने वर्गीय हितों के मद्देनज़र जनविरोधी मूल्य-मान्यताओं की स्वीकार्यता को समाज में स्थापित करने के लिए शिक्षा व्यवस्था का इस्तेमाल करता रहा है। इसीलिए हर दौर में शासक वर्ग अपने हितों के आधार पर शिक्षा व्यवस्था को बदलता रहा है और इस प्रक्रिया में अपने शासन को न्यायोचित और वैध ठहराने वाले जनमानस को तैयार करने का प्रयास करता रहा है। औपनिवेशिक दौर से लेकर आज तक का शिक्षा का इतिहास इस बात को पुष्ट करता है।

आज हम बर्बर साम्प्रदायिक फ़ासीवादी दौर में जी रहे हैं और फ़ासीवादी ताकतों द्वारा अपने राज को मजबूत आधार देने के मकसद से शिक्षा तन्त्र का सूक्ष्मतम और व्यापकतम इस्तेमाल किया जा रहा है। आम मेहनतकश अवाम के बच्चों के दिमागों में साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरपन्थ का ज़हर घोलने का काम जो पहले संघ की शाखाओं और संघ प्रायोजित विद्यालयों और महाविद्यालयों में होता था, आज वही काम फ़ासीवादी ताकतों द्वारा राज्य मशीनरी का इस्तेमाल कर कई गुना तेज़ी से किया जा रहा है। 2014 में मोदी के सत्ता में आने के बाद से तीन बार (2017, 2019 और

2022) पाठ्यक्रमों में बड़े बदलाव किये गये हैं और इस बार इसे पूरी तरह साम्प्रदायिक रंग में रंग देने की योजना है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) ने "औचित्यसाधन" और छात्रों पर पाठ्यक्रम का बोझ कम करने के नाम पर पाठ्यक्रमों से फ़ासिस्टों के काले इतिहास सहित जनता के गौरवशाली इतिहास के महत्वपूर्ण हिस्सों, जनसंघर्षों और जनवादी अधिकारों की जानकारी देने वाले कई हिस्सों और अध्यायों को हटा दिया है या इतिहास को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है। वहीं दूसरी तरफ़ भाजपा शासित राज्यों गुजरात और कर्नाटक में अब स्कूल के पाठ्यक्रम नैतिक मूल्यों और सिद्धान्तों से छात्रों को लैस करने की आड़ में धार्मिक ग्रन्थों को शामिल करने का फैसला लिया गया है। बारहवीं के राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम से 2002 के गुजरात नरसंहार से लेकर इन्दिरा गाँधी द्वारा 1975 में घोषित आपातकाल को या तो हटा दिया गया है या इसके पन्ने कम कर दिये गये हैं। जिन पन्नों को हटाया गया है उसमें गुजरात नरसंहार की आलोचना, आपातकाल के दौरान हुई राजनीतिक गिरफ़्तारियों, संसद भंग, मीडिया पर नियन्त्रण, कारावास में यन्त्रणाओं व हत्याओं, ग़रीबों के विस्थापन, ज़बरन नसबन्दी और फ़रमानशाहियों की आलोचनात्मक चर्चा थी। अब छात्र इन सच्चाइयों को पाठ्यक्रम से नहीं जान सकेंगे। मज़दूर आन्दोलन के अध्याय से भी आपातकाल की चर्चा हटा दी गयी है जिसमें मज़दूर यूनियनों की सभी गतिविधियों पर प्रतिबन्ध की बात की गयी है। कक्षा छ: से बारहवीं कक्षा तक के पाठ्यक्रम से कई अध्याय हटा दिये गये हैं जिनमें प्रतिरोध आन्दोलनों और सामाजिक आन्दोलनों की चर्चा थी। उत्तराखण्ड के चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, महाराष्ट्र में दलित पैन्थर, आन्ध्र प्रदेश का शराबबन्दी आन्दोलन आदि जिन-जिन अध्यायों में थे उन्हें हटा दिया गया है या उन पन्नों को कम कर दिया गया है। इन आन्दोलनों की अपनी कमियाँ-कमज़ोरियाँ थीं, उन्हें भी दिखाया जाना चाहिए। **लेकिन उन्हें पूरी तरह से हटाना शिक्षा से जनप्रतिरोध के इतिहास को मिटाने का प्रयास है।** फ़ासिस्ट सबसे अधिक जनप्रतिरोध से भयाक्रान्त रहते हैं। ऐसा नहीं है कि इनके जनप्रतिरोधों के इतिहास को मिटा देने से जनप्रतिरोध की सम्भावनाएँ मिट जायेंगी। लेकिन निश्चिय ही प्रतिरोध का इतिहास भावी पीढ़ी को अन्याय से लड़ने की शिक्षा देता है। बच्चों और नौजवानों को सवाल करना नहीं बल्कि मात्र आज्ञा पालन सिखाना संघ परिवार का उद्देश्य है। इतना ही नहीं अब भारतीय संस्कृति को जानने-समझने के नाम पर राजस्थान के स्कूलों में हर शनिवार को धार्मिक गुरुओं का प्रवचन भी होगा! **अब सहज**

ही समझा जा सकता है कि जिन स्कूलों में विज्ञान के लैब तक नहीं है वहाँ धार्मिक गुरुओं का प्रवचन करने के पीछे मंशा क्या हो सकती है।

नयी शिक्षा नीति के तहत मोदी सरकार ने शिक्षा के फ़ासीवादीकरण की मुहिम को और तेज़ किया है। मौजूदा 10+2 के ढाँचे को ख़त्म कर 5+3+3+4 के ढाँचे को लागू किया जायेगा। 3-6 साल के बच्चों को 'अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन' दी जायेगी जिसकी ज़िम्मेदारी आँगनवाड़ी केन्द्रों की रहेगी और जिसके लिए बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और एनजीओ की मदद ली जायेगी। एक ओर इसका अर्थ होगा स्कूलों पर से विनिवेश और दूसरी ओर इसका अर्थ होगा मानदेय के नाम पर खटवाये जा रहे तथाकथित "समाज-सेवक" युवाओं की बेरोज़गारी का फ़ायदा उठाकर उनका अतिशोषण। वहीं शिक्षा का स्तर भी बेहद नीचे गिर जायेगा। साथ ही, इस नीति के ज़रिये आरएसएस को अपने ज़हरीले प्रयोग के लिए नन्हें मस्तिष्क की पूरी नर्सरी ही सौंपी जा रही है जो इस पूरी प्रक्रिया में अपने लोगों को घुसाकर बालमन में धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता का ज़हर घोलेगा। इसीलिए यह शिक्षा नीति 3 से 6 वर्ष के बच्चों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर इतना ज़ोर दे रही है।

बुनियादी सुविधाओं की कमी से जूझता सरकारी प्राथमिक शिक्षा तन्त्र

"जिस समाज ने प्रतिभाओं को जीते-जी दफ़नाना कर्तव्य समझा है और गदहों के सामने अंगूर बिखेरने में जिसे आनन्द आता है, क्या ऐसे समाज के अस्तित्व को हमें पल भर भी बर्दाश्त करना चाहिए?"

— राहुल सांकृत्यायन

सरकारी कारगुज़ारियों से देश का प्राथमिक शिक्षा तन्त्र बर्बादी के मुहाने पर खड़ा है। तमाम सरकारी और गैरसरकारी रपटें और ख़ुद सरकार के नुमाइन्दों द्वारा संसद में पेश की गयी रिपोर्ट शिक्षा सुधार के तमाम दावों की पोल-पट्टी खोलकर रख देती है। **शिक्षा अधिकार क़ानून-2009** के तहत 6-14 वर्ष तक के छात्रों के लिए औपचारिक तौर पर शिक्षा मूलभूत अधिकार बन जाने की क़ानूनी लफ़्फ़ाज़ी की आड़ में असली सच्चाई को छिपा दिया जाता है। जिन सरकारी स्कूलों में बच्चों को शिक्षा दी जा रही है, उनमें बुनियादी सुविधाओं जैसे कि शिक्षकों, शौचालयों, पीने के पानी, प्रयोगशालाओं आदि तक की समुचित व्यवस्था नहीं है। शिक्षा मन्त्रालय के स्कूली शिक्षा और साक्षरता

विभाग के मुताबिक़ केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 10 लाख 32 हज़ार स्कूलों का संचालन किया जा रहा है। देश में कुल संचालित विद्यालयों में 68.48 फ़ीसदी सरकारी है लेकिन सरकारी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की संख्या कुल कार्यरत शिक्षकों की संख्या का मात्र 50 फ़ीसदी है। वहीं देश भर में 22.38 फ़ीसदी विद्यालय निजी तौर पर संचालित हो रहे हैं। जबकि निजी क्षेत्र में कुल 37.1 फ़ीसदी शिक्षक कार्यरत हैं। **सरकार की ओर से लोकसभा में दिये गये एक जवाब के मुताबिक़ देश के प्राथमिक विद्यालयों में 9,07,585 शिक्षकों की कमी है। वहीं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में एक लाख से अधिक स्वीकृत शिक्षकों के पद ख़ाली पड़े है। यानी अगर इन पर सरकार भर्ती करे तो तत्काल क़रीब 11 लाख सक्षम युवाओं को रोज़गार मिल सकता है, जो डिग्रियाँ लेकर सड़कों पर चप्पलें फटकार रहे हैं।**

नवोदय और केन्द्रीय विद्यालय भी अब सरकारी उदासीनता के शिकार हो रहे हैं। लोकसभा में सरकार की ओर से दी गयी जानकारी के मुताबिक़ **30 जून 2022 तक केन्द्रीय विद्यालय संगठन में टीचिंग स्टाफ के कुल 12,044 पद और नॉन टीचिंग स्टाफ 1322 पद के ख़ाली हैं।** नवोदय विद्यालयों में भी साल दर साल ख़ाली पड़े पदों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। **2019 की तुलना में 2020 में नवोदय विद्यालयों में ख़ाली पड़े शिक्षकों के पदों में लगभग 8 फ़ीसदी की वृद्धि हुई है। 2019 में नवोदय विद्यालयों में शिक्षकों के कुल 3160 पद ख़ाली थे जो 2020 में बढ़कर 3414 तक पहुँच गये।** केन्द्रीय और नवोदय विद्यालयों में कुल स्वीकृत पद अव्वलन तो छात्र-शिक्षक अनुपात में पहले ही काफ़ी कम हैं जो स्वीकृत हैं उसमें से भी लगभग 40 फ़ीसदी शैक्षिक और गैर-शैक्षिक पद ख़ाली पड़े हैं।

प्रदेश	शिक्षकों के रिक्त पद
झारखण्ड	38.39 फ़ीसदी
बिहार	34.37 फ़ीसदी
पश्चिम बंगाल	33.01 फ़ीसदी
मध्यप्रदेश	क़रीब 30 फ़ीसदी
छत्तीसगढ़	क़रीब 30 फ़ीसदी
दिल्ली	24.96 फ़ीसदी
उत्तरप्रदेश	22.99 फ़ीसदी

कम्प्यूटर, पुस्तकालय, शौचालय और खेलने के लिए मैदान की स्थिति

'एनुअल स्टेटस ऑफ़ एजुकेशन रिपोर्ट' (असर) के आँकड़े बताते है कि देश के क़रीब 79 फ़ीसदी स्कूलों में कम्प्यूटर हैं ही नहीं, और जिनमें हैं वहाँ भी उनमें से मात्र 6.5 प्रतिशत में ही कम्प्यूटर का उपयोग हो रहा था। पुस्तकालय की बात करें तो 2014 में 100 स्कूलों में से 32 स्कूलों में छात्रों के इस्तेमाल के लिए जो पुस्तकालय थे उनकी संख्या घटकर 2018 में 27 रह गयी। जम्मू-कश्मीर, बिहार, उड़ीसा, और झारखण्ड के 25 फ़ीसदी से ज्यादा सरकारी स्कूलों में खेलने के लिए पार्क नहीं हैं और यही हालत कमोबेश पूरे देश की है। **केवल 5.8 फ़ीसदी प्राथमिक और 30 फ़ीसदी माध्यमिक स्कूलों में खेलकूद के शिक्षक है। लगभग 45 फ़ीसदी प्राथमिक और 29 फ़ीसदी उच्च प्राथमिक विद्यालयों में किसी भी प्रकार की खेल सामग्री नहीं है।** ऐसे में, देश उत्कृष्ट खिलाड़ियों को कैसे पैदा कर सकता है? खेल भी केवल अमीरों की बपौती बन चुका है। सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मोदी सरकार छात्रों-नौजवानों के भविष्य को लेकर कितनी चिन्तित है।

प्राथमिक और अपरप्राथमिक विद्यालयों में सुविधाएँ (% में), स्रोत:असर-2018		**2010**	**2014**	**2016**	**2018**
लाइब्रेरी	नहीं है	37.4	21.9	24.6	25.8
	है लेकिन उपयोग में नहीं है	24.7	37.4	32.9	37.3
	उपयोग में है	37.9	40.7	42.6	36.9
कम्प्यूटर	नहीं है	84.2	80.4	80.0	78.7
	है लेकिन उपयोग में नहीं है	7.2	12.6	11.9	14.8
	उपयोग में है	8.6	7.0	8.1	6.5
पेय जल	नहीं है	17	13.9	13.5	13.9
	है लेकिन उपयोग में नहीं है	10.3	10.5	10.8	11.3
	उपयोग में है	72.7	75.6	75.2	74.8

शिक्षकों की भयंकर कमी, स्कूलों को मिलने वाली बुनियादी सुविधाओं में कटौती, इंफ्रास्ट्रक्चर की जर्जर हालत का मिश्रित परिणाम यह है कि भिन्न-भिन्न

पाठ्यक्रम, मानसिक क्षमता और अलग-अलग कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों को एक साथ एक ही अध्यापक पढ़ा रहा है। **वर्ष 2018 में 63 फ़ीसदी से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा दो के बच्चे अन्य कक्षाओं के साथ बैठे थे जबकि 2010 में यह आंकड़ा 55 फ़ीसदी था।** ज़्यादातर प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में मिश्रित कक्षाओं का संचालन हो रहा है। देशभर के प्राथमिक विद्यालयों की ख़स्ता हालत को निम्न तालिका से समझा जा सकता है।

मिश्रित कक्षाएँ (आँकड़े फ़ीसदी में) **स्रोत: असर-2018**	**2010**	**2014**	**2018**
विद्यालय जहाँ कक्षा 2 के छात्र एक या अधिक अन्य कक्षाओं के साथ बैठते हैं	55.2	62.8	63.4
विद्यालय जहाँ कक्षा 4 के छात्र एक या अधिक अन्य कक्षाओं के साथ बैठते हैं	49	56.8	58

उपरोक्त आँकड़े देश में प्राथमिक शिक्षा तन्त्र की बर्बादी की गवाही दे रहे हैं। मोदी सरकार इसे ठीक करने की जगह स्कूलों को बन्द करने या दो या दो से अधिक स्कूलों को मिलाकर एक करने की योजना बना रही है। इसकी शुरुआत हरियाणा में **चिराग योजना** के ज़रिये कर भी दी गयी है। बड़े पैमाने पर शिक्षा का निजीकरण किया जा रहा है। निजी स्कूल लूट के अड्डे बन चुके हैं। लोगों की हैसियत के हिसाब से बाज़ार में अलग-अलग स्तर के निजी स्कूल हैं जो लोगों की जेब से आख़िरी पाई तक निकाल लेने पर आमादा हैं।

मोदी सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: शिक्षा पर एक और हमला

नयी शिक्षा नीति-2020 भेदभावपूर्ण दोहरी शिक्षा प्रणाली को ख़त्म कर न्याय और समानता पर आधारित शिक्षा व्यवस्था लागू करने के नाम पर न सिर्फ़ महँगे निजी स्कूलों के शोषणकारी जाल को बनाये रखती है बल्कि उसे और ज़्यादा मजबूत बनाती है। **शिक्षा को सबके लिए अनिवार्य और नि:शुल्क करने की जगह पीपीपी मॉडल के तहत इसे भी मुनाफ़े के मातहत कर दिया गया है। नयी**

शिक्षा नीति के जरिये मोदी सरकार गुणवत्ता को उन्नत करने के नाम पर शिक्षा से सरकार की ज़िम्मेदारी को पूरी तरह ख़त्म करने पर आमादा है। वैसे तो यह नीति 2030 तक 100% साक्षरता के लक्ष्य को पाने की बात करती है परन्तु दूसरी तरफ़ 50 से कम छात्रों वाले सरकारी स्कूलों का विलय करने या बन्द करने की भी सिफ़ारिश करती है। मतलब साफ़ है कि यह शिक्षा नीति पहले से तबाह प्राथमिक शिक्षा को पूरी तरह से निजी पूँजी के मातहत ला खड़ा कर देगी। समान और निःशुल्क शिक्षा की बात किताबी बात बनकर रह जायेगी।

नयी शिक्षा नीति और उच्च शिक्षा

मोदी सरकार की **नयी शिक्षा नीति** उच्च शिक्षा केन्द्रों में रहे-सहे जनवादी स्पेस का भी गला घोंट देगी। **नयी शिक्षा नीति 2020** लागू होने के बाद उच्च शिक्षा के हालात और भी बुरे होने वाले हैं। पहले से ही लागू सेमेस्टर सिस्टम, एफ़वाईयूपी, सीबीसीएस, यूजीसी की जगह एचईसीआई इत्यादि स्कीमें भारत की शिक्षा व्यवस्था को अमेरिकी पद्धति के अनुसार ढालने के प्रयास थे। संघी "राष्ट्रवादियों" के जांघिये में पड़ा नाड़ा दरअसल अमेरिका से आयातित है! इस नीति के आने के बाद अब देशी-विदेशी शिक्षा माफ़िया देश में निवेश करके अपने कैम्पस खड़े कर सकेंगे और पहले से ही अनुकूल शिक्षा के ढाँचे को सीधे तौर पर निगल सकेंगे। शिक्षा के मूलभूत ढाँचे की तो बात ही क्या करें, यहाँ तो शिक्षकों का ही टोटा है। **केन्द्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों में क़रीबन 70 हजार प्रोफ़ेसरों के पद ख़ाली हैं।**

इस शिक्षा नीति में देश के शीर्ष 100 विश्वविद्यालयों में ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा प्रदान करने की बात की गयी है। यह नीति दूरस्थ शिक्षा के मूल्यांकन, नियोजन, प्रशासन (स्कूल और उच्च शिक्षा दोनों) के लिए एक स्वायत्त निकाय, नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फ़ोरम (एनईटीएफ़) बनाने की बात करती है। नीति एनईटीएफ़ की फण्डिंग के विषय में कुछ स्पष्ट नहीं करती जिसका सीधा अभिप्राय यह है कि इसका भार विद्यार्थियों पर थोप दिया जायेगा। स्पष्ट है की ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा लागू होने का सीधा मतलब है, दूर-दराज़ के गाँवों मे बसने वाले लाखों-लाख छात्र इण्टरनेट की अनुपलब्धता, गैजेट न होने की वजह से सीधे शिक्षा से दूर हो जायेंगे। दूसरे, जब छात्र विश्वविद्यालयों में रहेंगे ही नहीं तो सरकार की जन-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ एकजुट होकर आवाज़ भी नहीं उठा सकेंगे। कम-से-कम ऐसा मोदी सरकार

को लगता है। **कुल मिलाकर 'नयी शिक्षा नीति 2020' जनता के हक़ के प्रति नहीं बल्कि बड़ी पूँजी के प्रति समर्पित है।** शिक्षा की नयी नीति हरेक स्तर की शिक्षा पर नकारात्मक असर डालेगी।

शिक्षा नीति के ज़रिये विश्वविद्यालयों में मोदी सरकार ने बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स (बीओजी) का एक नया तन्त्र सुझाया है, जिसमें देश के मानिन्द लोग होंगे और यह बोर्ड विश्वविद्यालय समुदाय के प्रति किसी भी रूप में जवाबदेह नहीं होगा। ज़रूरी नहीं है कि बोर्ड के ये 'मानिन्द' लोग शिक्षा से जुड़े लोग ही हों। बीओजी के पास फ़ीस पर फैसला करने, उच्च शिक्षा संस्थान (एचईआई) के प्रमुख सहित नियुक्तियाँ करने और शासन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार होगा। शासन का यह मॉडल स्वायत्तता और अकादमिक उत्कृष्टता को केन्द्रीकृत और नष्ट कर देगा। विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग गठित किया जायेगा, जिसकी अध्यक्षता शिक्षा मन्त्री करेंगे, और राज्य सरकारों के संस्थानों पर भी केन्द्र का नियन्त्रण होगा। आयोग के सदस्यों का चयन भी प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली एक कमेटी करेगी। **यानी पूरे देश में केजी से लेकर पीजी तक – पूरी शिक्षा व्यवस्था पर अकेले एक तानाशाह का हुक्म चलेगा।** एक तरफ़ इस शिक्षा नीति के जरिये मोदी सरकार विश्वविद्यालयों में प्रशासनिक केन्द्रीकरण को बढ़ावा दे रही है तो वहीं दूसरी तरफ़ शिक्षा नीति शिक्षण-संस्थानों को शैक्षिक-प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता देने की बात करती है। **नयी शिक्षा नीति** का मूल ड्राफ़्ट शिक्षा पर जीडीपी का 6% और केन्द्रीय बजट का 10% ख़र्च करने की बात करता है, किन्तु साथ ही उसमें यह भी कहा गया है कि यदि कर (टैक्स) कम इकट्ठा हो तो इतना ख़र्च नहीं किया जा सकता। एक तरफ़ यह नीति शिक्षा को प्रशासनिक जकड़बन्दी में क़ैद करने पर तुली हुई है वहीं दूसरी तरफ़ वित्तीय स्वायत्तता का राग अलाप रही है। वित्त के लिए इस नीति ने विश्वविद्यालय को पूरी छूट दे रखी है कि पूँजीपतियों, बैंकों, देशी-विदेशी कॉरपोरेट घरानों आदि से पैसा माँग लें जिसका मूलधन विश्वविद्यालय को इकट्ठा करना होगा और ब्याज़ सरकार भर देगी। ज़ाहिर है कि जो पैसा देगा वह हमारे संस्थानों पर अपनी शर्तें भी थोपेगा। इन संस्थानों में कोर्स, किताबों व शिक्षकों की क़ाबिलियत और शिक्षकों के मापदण्ड के फ़ैसले भी यही पैसा देनेवाले करेंगे, चाहे वे विद्यार्थियों, समाज व देश के हित में हो या न हो। उच्च शिक्षा को सुधारने के लिए 'हायर एजुकेशन फ़ाइनेंशियल एजेंसी (HEFA)' बनी हुई है जिसका बजट 2021-22 में घटाकर 2,100 करोड़ कर दिया है। 2020-21 में यह बजट 2,750 करोड़ था किन्तु हैरानी की बात तो

यह है कि ख़र्च सिर्फ़ 250 करोड़ ही किया गया था। **दरअसल हेफ़ा अब विश्वविद्यालयों को अनुदान की बजाय क़र्ज़ देगी जो उन्हें 10 वर्ष के अन्दर चुकाना होगा।** सरकार लगातार उच्च शिक्षा बजट को कम कर रही है। सरकार की मानें तो विश्वविद्यालय को अपना फ़ण्ड, फ़ीसें बढ़ाकर या किसी भी अन्य तरीक़े से (जिसका बोझ अन्ततः विद्यार्थियों पर ही पड़ेगा) जुटाना होगा। निजी विश्वविद्यालयों को पाठ्यक्रम, प्रशासनिक व्यवस्था, फ़ीस आदि चीज़ों को निर्धारित करने की स्वायत्तता रहेगी, इस प्रकार निजी विश्वविद्यालयों पर सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं रहेगा **जिसका सीधा मतलब है कि इन निजी विश्वविद्यालयों के दरवाज़े आम मेहनतकश वर्गों से आने वाले लोगों के लिए हमेशा के लिए बन्द हो जायेंगे।**

मध्य वर्ग के जो छात्र पैसे के दम पर प्राइवेट शिक्षा की सुविधा लेकर उच्च शिक्षा हासिल भी कर लेंगे उनके लिए भी भविष्य का संकट मुँह खोले बैठा है। एमएससी, पीएचडी, पोस्ट-डॉक्टोरेट करने वाले देश के बहुत से छात्रों को यदि अपनी प्रतिभाओं का इस्तेमाल सही दिशा में करने का मौक़ा मिले तो वे ज़रूर कुछ नया कर सकते हैं पर आज इनमें से अधिकतर अपनी डिग्रियाँ लेने के बाद बैंक, रेलवे, एलआईसी आदि नौकरियों की तैयारी करने में अपनी प्रतिभा होम कर देते हैं। **इन मेधावी छात्रों की वर्षों की मेहनत पर इससे भद्दा मज़ाक़ क्या होगा कि देश का फ़र्ज़ी डिग्रीधारी प्रधानमन्त्री इन्हें पकौड़ा तलने की नसीहत दे।** ऑटोनॉमी के नाम पर निजीकरण और विभिन्न ज़रूरी प्रोजेक्ट्स से पल्ला झाड़ते हुए उन्हें सेल्फ फ़ण्डिंग की सूची में डालना, फ़ेलोशिप में भारी कटौती करना, उच्च शिक्षा का दरवाज़ा देशी और विदेशी पूँजीपतियों के लिए खोलना, देर-सबेर उच्च शिक्षा को भी उसी दलदल में पहुँचा देगा जहाँ प्राथमिक शिक्षा का तन्त्र पहले ही पहुँच चुका है।

समाधान केवल एक है: शिक्षा के अधिकार के लिए संघर्ष का रास्ता! सरकार को हरेक नागरिक को हर स्तर पर एकसमान व निशुल्क शिक्षा देनी चाहिए और इसके लिए समूची शिक्षा व्यवस्था का निजीकरण समाप्त कर उसका राष्ट्रीकरण कर देना चाहिए। यह तो हम कोई असम्भव चीज़ या नयी व्यवस्था भी नहीं माँग रहे, बहुत-से पूँजीवादी देशों ने भी अपने नागरिकों को यह क़ानूनी अधिकार दिया है। यह बिल्कुल सम्भव है। उरुग्वे, अर्जेण्टीना, यूनान, ब्राज़ील, पोलैण्ड, हंगरी और यहाँ तक कि संकटग्रस्त श्रीलंका तक हरेक नागरिक को हर स्तर पर निशुल्क शिक्षा दे रहे हैं। हमें दिमाग़ी गुलामी छोड़कर यह समझ लेना चाहिए कि अरबों

रुपयों के रूप में अप्रत्यक्ष कर देकर हम अपनी शिक्षा, चिकित्सा, आवास आदि की क़ीमत पहले ही अदा कर चुके होते हैं। अगर सरकार अरबों रुपये करों के रूप में वसूलकर केवल अम्बानियों-अडानियों को तोहफ़े देने के लिए है, तो उसे सरकार में बने रहने का कोई हक़ नहीं।

बढ़ती बेरोज़गारी से परेशानहाल देश के युवा

अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की जद्दोजहद में सबसे बड़ा सवाल रोज़ी-रोटी का आता है और इस सवाल पर भारत की स्थिति बहुत ही संकटपूर्ण है। सरकारी और प्राइवेट दोनों ही क्षेत्रों में किसी भी एक पद के पीछे हज़ारों बेरोज़गार युवाओं की लम्बी-लम्बी कतारें हैं। स्थिति की भयावहता तब समझ आती है जब कुछ हज़ार पदों की निकलने वाली भर्तियों के लिए करोड़ों नौजवान आवेदन करते हैं। रोज़गार के मुद्दे पर वोट बैंक की राजनीति भी खूब चलती है। **भाजपा भी हर साल 2 करोड़ रोज़गार देने का वायदा करके 2014 में सत्ता में आयी थी।** लेकिन रोज़गार देने की बात तो छोड़िए पिछले नौ सालों में सरकारी विभागों, सार्वजनिक क्षेत्रों, निगमों से लेकर प्राइवेट सेक्टर तक में अभूतपूर्व रूप से छँटनी हुई है। यह छँटनी किस पैमाने पर हो रही है, इसको इसी से समझा जा सकता है कि भारत में ट्विटर ने अपने 80 फ़ीसदी कर्मचारियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया है। हाल ही में अमेज़ॉन ने अपने 18,000 और एचपी ने अपने 6,000 से ज़्यादा कर्मचारियों को निकालने की बात कही है। जुलाई 2022 से लेकर अब तक माइक्रोसॉफ़्ट तीन बार और नेटफ्लिक्स दो बार छँटनी कर चुका है। हार्डड्राइव निर्माता कम्पनी सीगेट 3,000 से ज़्यादा लोगों की छँटनी कर चुकी है। स्थिति यह है कि देश में सबसे ज़्यादा रोज़गार देने वाले विभाग रेलवे में पिछले सात सालों में डेढ़ लाख से ज़्यादा पदों को समाप्त किया जा चुका है, और बचे हुए स्वीकृत पदों में से भी तीन लाख से अधिक पद ख़ाली हैं। यही हालत अन्य विभागों की भी है। **जुलाई 2022 में केन्द्रीय कार्मिक राज्य मन्त्री जितेन्द्र सिंह ने लोकसभा में बताया कि मोदी सरकार के 8 वर्षों के कार्यकाल में लगभग 22.5 करोड़ लोगों ने नौकरी के लिए आवेदन किये थे, जिसमें से केवल 7.22 लाख लोगों को ही नौकरी मिल पायी है।**

इतना ही नहीं, सेना में 'अग्निवीर' के नाम पर ठेके पर सैनिक भर्ती करने की हमारी "राष्ट्रवादी" मोदी सरकार की योजना के बाद अब यही प्रयोग सभी बैंकों सहित अन्य

विभागों पर भी लागू करने पर काम चल रहा है। पकौड़ा तलने को रोज़गार बताने से लेकर कर्मचारियों को पेंशन और सुविधाओं से वंचित करने वाली फ़ासीवादी मोदी सरकार ही 'अग्निवीरों' के जैसे रोज़गार का सृजन कर सकती है। जिसमें भविष्य की सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं होगी और बहुसंख्यकों के भविष्य की सुरक्षा के झूठे जुमले के नाम पर धार्मिक अल्पसंख्यकों, राष्ट्रीयताओं, सम्प्रदायों या नस्लों को निशाना बनाया जाता रहेगा।

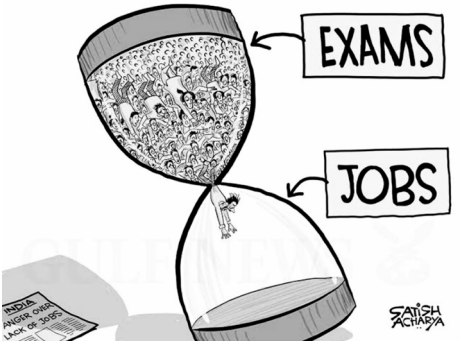

वैसे पूँजीवादी व्यवस्था जिस ढाँचागत आर्थिक संकट का शिकार है उसमें रोज़गार सृजन की सम्भावना लगातार गिरती जा रही है। **आरबीआई की रिपोर्ट बताती है कि साल 1980 से लेकर 1990 तक सालाना रोज़गार की वृद्धि दर 2% रही। साल 1990 से लेकर साल 2010 तक सालाना रोज़गार की वृद्धि दर घटकर 1.7 फ़ीसदी रही। साल 2000 से लेकर साल 2010 तक रोज़गार की वृद्धि दर घटकर 1.3 फ़ीसदी हो गयी। साल 2010 से लेकर साल 2020 तक रोज़गार की वृद्धि दर में और अधिक कमी आयी और यह घटकर 0.2 फ़ीसदी तक पहुँच चुकी है।**

वहीं दूसरी तरफ़ सरकार बेरोज़गारी दर के आँकड़ों के पीछे वास्तविक बेरोज़गारी को छुपाने का काम कर रही है। दरअसल भारत में रोज़गार की तलाश करने वाले लोगों की संख्या में ज़बरदस्त गिरावट आयी है। भारत में पहले से ही कम लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन है। जिसकी दर दिसम्बर, 2021 में और लुढ़ककर 40 फ़ीसदी के ख़तरनाक आँकड़ें पर पहुँच गयी। इसका मतलब भारत में रोज़गार की उम्र वाले लोगों में से आधे से ज़्यादा ने अब किसी रोज़गार की तलाश ही छोड़ दी है। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह आबादी अब रोज़गार नहीं चाहती और उसके आँगन में अचानक पैसे का पेड़ उग आया है। ऐसा तब होता है जब रोज़गार की तलाश करते-करते व्यक्ति थक जाये और पटरी दुकान, रेहड़ी-खोमचा लगाकर, रिक्शा-ईरिक्शा चलाकर, ठेला खींच कर किसी तरह पेट का गड्ढा भर के बिना शिक्षा, चिकित्सा, आवास की उपयुक्त

सुविधा के, बस भुखमरी रेखा पर जीते-जीते अकाल मृत्यु का शिकार हो जाये!

लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट को समझने से पहले लेबर फोर्स को समझना जरूरी है। 15 साल से 64 साल तक की उम्र के ऐसे सभी लोग जो या तो कोई नौकरी कर रहे हैं या फिर करना चाहते हैं, लेबर फोर्स का हिस्सा होते हैं। भारत में लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन न सिर्फ़ दुनिया के औसत से बहुत कम है, बल्कि लगातार गिर भी रहा है। दुनिया भर में लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन की दर क़रीब 60 फ़ीसदी है। यानी काम करने वाली उम्र के सभी लोगों में 60 फ़ीसदी या तो काम कर रहे हैं या फिर काम ढूँढ रहे हैं। जबकि भारत में पिछले दस सालों में लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन की दर गिरते-गिरते दिसम्बर 2021 में 40 फ़ीसदी पर जा पहुँची है। जबकि पाँच साल पहले यह 47 फ़ीसदी थी। लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन की दर में इस भयंकर गिरावट के चलते बेरोज़गारी दर, रोज़गार के क्षेत्र में मची खलबली की ग़लत तस्वीर पेश कर रही है।

दरअसल बेरोज़गारी दर को लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन के आधार पर मापा जाता है। मसलन अगर रोज़गार कर सकने की उम्र के 100 लोग हों लेकिन उनमें से सिर्फ़ 60 ही काम करना चाहते हों तो लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन की दर 60 फ़ीसदी हो जाएगी। और अगर इन 60 में से 6 को काम न मिले तो बेरोज़गारी दर 10 फ़ीसदी मानी जाएगी। अब सोचिए कि लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट गिरकर 40 फ़ीसदी हो जाए यानी देश में रोज़गार की उम्र वाले सिर्फ़ 40 फ़ीसदी लोग ही रोज़गार में लगे हों या रोज़गार करना चाहते हों और इन 40 में से 4 को काम न मिले, तब भी बेरोज़गारी दर 10 फ़ीसदी ही रहेगी। इससे ऐसा लगेगा कि नौकरियों के मोर्चे पर कोई खास समस्या नहीं है। यह है सरकार द्वारा की जाने वाले आँकड़ों की बाज़ीगरी। लेकिन सच इससे कहीं ज्यादा भयावह है। यूँ तो अब छह के बदले सिर्फ़ चार ही लोग बेरोज़गार हैं, लेकिन उनके अलावा 20 लोग ऐसे भी होंगे, जो काम की तलाश ही छोड़ चुके होंगे।

अर्थव्यवस्था पर नजर रखने वाली संस्था सेण्टर फॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी

(सीएमईआई) के जारी किए आँकड़ों के मुताबिक, भारत में अर्थव्यवस्था में भाग लेने वाले कामगारों का हिस्सा 2016 के मुकाबले 15 फ़ीसदी और कम हो गया है।

जिनको किसी तरह रोज़गार मिला है, उनकी हालत क्या है? देश में जो आबादी रोज़गारशुदा है भी, उनमें से बड़ी आबादी **असंगठित क्षेत्र** में काम कर रही है। इस आबादी के लिए न कोई श्रम क़ानून है और न ही किसी अन्य प्रकार की कोई सामाजिक सुरक्षा। पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे ऑफ़ इण्डिया, 2021 के अनुसार देश में लगभग **दस करोड़ दिहाड़ी मज़दूर और लगभग पाँच करोड़ वेतनभोगी मज़दूर बिना किसी लिखित अनुबन्ध के कार्य कर रहे हैं।** ज़्यादातर नियमित प्रकृति के कामों को नियमित मज़दूरों की जगह आउटसोर्सिंग के माध्यम से कराया जा रहा है। 2004 के बाद से आउटसोर्स मज़दूरों की संख्या में 40 फ़ीसदी की वृद्धि हो चुकी है।

मोदी सरकार की बेरोज़गार आबादी को "स्वरोज़गार" का झाँसा देने और 'स्टार्टअप' तथा 'मेक इन इण्डिया' के जुमले की भी सच्चाई यह है कि **भारत में 95 प्रतिशत स्टार्टअप एक साल भी नहीं टिक पाते।** जो बचे हुए स्टार्टअप हैं भी, उनमें से भी **85 प्रतिशत की मासिक आय दस हज़ार रुपये से कम है।** 10 हज़ार से कम की आमदनी पर जीने वाली इस करोड़ों की आबादी किसी तरह बस दो वक्त की रोटी का ही जुगाड़ कर पाती है। इस आय में बेहतर शिक्षा, आवास, पौष्टिक भोजन, मनोरंजन के बारे में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। **मोदी के आत्मनिर्भर होने के नारे का यही मतलब था: 'सरकार तो अडानी-अम्बानी जैसे धन्नासेठों की तिजोरियाँ भरवायेगी, बाकी लोग अपना-अपना ख़ुद देख लो!' हम नरेन्द्र मोदी से कहते हैं कि हम अपना-अपना देख लेंगे, तुम सारे टैक्स वसूलना बन्द कर दो! आख़िर देश के सारे कल-कारखाने, खान-खदान, खेत-खलिहान और दफ़्तर तो हम ही चला रहे हैं, आखिर तुम्हारा काम क्या है? पहले तुम ख़ुद आत्मनिर्भर बन जाओ!'**

देश में रोज़गार का यह संकट असमाधेय नहीं है। पूँजीवादी विकास की असमानता की वजह से आज देश की एक बड़ी आबादी की ज़िन्दगी अँधेरे में धकेल दी गयी है। अगर पूरे देश स्तर पर गाँवों में अस्पताल, स्कूल, परिवहन आदि बुनियादी ज़रूरतों पर ही काम किया जाये तो न केवल लोगों की सुविधाएँ बढ़ेंगी बल्कि इस प्रक्रिया में करोड़ों नौकरियाँ भी पैदा होंगी। लेकिन मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था के लिए लोगों और उनकी ज़रूरतों को ध्यान में नहीं रखा जाता है बल्कि कोई भी नीति मुनाफ़े को केन्द्र में रखकर बनायी जाती है। बहुत से सोचने-समझने वाले

लोगों को भी लगता है कि आख़िर इसके लिए संसाधन कहाँ से आयेंगे। हमारे विविधतापूर्ण देश में न तो पैसों की कमी है और न ही संसाधनों की। पिछले दस सालों में ही देश में 2.10 लाख करोड़ रुपये देश के पूँजीपति घरानों को बेलआउट पैकेज और करों में छूट के रूप में दिये जा चुके हैं। 2015-21 के बीच ही पूँजीपतियों को दी गयी 10 लाख करोड़ से ज़्यादा की राशि बट्टे खाते में डाली जा चुकी है। पूँजीपति वर्ग, नेताओं-मन्त्रियों और नौकरशाहों की फ़िजूलख़र्ची और असीमित सुविधाओं पर लगाम लगायी जाये तो भी पूँजी और संसाधनों को रोज़गार सृजन के लिए जुटाया जा सकता है। जो 50 करोड़ लोग असंगठित क्षेत्र में 10-12 घण्टे काम कर रहे हैं, यदि केवल उनको 8 घण्टे के काम का क़ानूनी हक़ वास्तव में दिया जाये तो कम-से-कम 12 से 14 करोड़ नये रोज़गार पैदा हो जायेंगे।

यह भी कहा जाता है कि बेरोज़गारी के लिए हम ही आबादी बढ़ाकर ज़िम्मेदार हैं! आइये हुक्मरानों के इस झूठे दावे की पड़ताल करते हैं। अपने आपमें आबादी कोई कारक नहीं है, बल्कि आबादी का घनत्व कारक है। यदि रूस में भारत जितनी आबादी रहती तो उसे ज़्यादा नहीं माना जाता। और अगर नार्वे जितनी कम आबादी भी तुवालू जैसे छोटे देश में रहती तो उसे ज़्यादा माना जाता। **इसलिए हमें आबादी घनत्व को पैमाना मानना चाहिए। आबादी घनत्व की बात करें तो नीदरलैण्ड, साउथ कोरिया, ताईवान, सिंगापुर आदि देशों का आबादी घनत्व भारत से ज़्यादा है। लेकिन वहाँ रोज़गार दर भारत से कहीं ज़्यादा ऊँची है। जीवन-स्तर भी भारत से कहीं बेहतर है। यह सच है कि इन देशों में भी कोई आदर्श जनपक्षधर व्यवस्था नहीं है और वहाँ भी पूँजीपतियों का शासन है जो मज़दूरों-मेहनतकशों को लूटते हैं। लेकिन सिर्फ़ इतना साबित करने के लिए कि बेरोज़गारी का कारण आबादी नहीं है, इनकी मिसाल पर्याप्त है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो इन देशों में बेरोज़गारी, भुखमरी, अशिक्षा, असुरक्षा और अनिश्चितता भारत से ज़्यादा होनी चाहिए थी। इनके पास तो भारत जितने प्राकृतिक संसाधन भी नहीं हैं और न ही इतने विविधतापूर्ण संसाधन हैं।** बात पर गहराई से सोचिये। **आदमी का बच्चा केवल पेट लेकर नहीं पैदा होता। वह हाथ-पाँव और दिमाग़ लेकर भी पैदा होता है। वह केवल संसाधनों का उपभोग नहीं करता बल्कि वह संसाधन पैदा भी कर सकता है। जितने लोग होंगे, उतनी ज़रूरतें होंगी, और भारत जैसी शस्य-श्यामला धरती पर जहाँ अधिकांश बुनियादी संसाधनों की कोई कमी नहीं है, वहाँ यदि**

एक जनपक्षधर व्यवस्था हो जिसका लक्ष्य चन्द धनपशुओं का मुनाफ़ा नहीं बल्कि सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करना हो, तो कोई वजह नहीं है कि देश में एक भी व्यक्ति बेरोज़गार, भूखा या बेघर हो। आबादी का तर्क तो हुक्मरान इसलिए देते हैं, ताकि अपनी नाकाम व्यवस्था की नाकामी का बोझ हमारे सिर डाल दें और उसका ठीकरा हमारे सिर फोड़ दें।

कुल मिलाकर यह घोर मानवद्रोही मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था ख़ुद ही अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही है। दरअसल, पूरी दुनिया में और हमारे देश में साम्प्रदायिक व धार्मिक कट्टरपन्थी व फ़ासीवादी सत्ताओं का उभार इसी आर्थिक और राजनीतिक संकट का ही नतीजा है। इसके पास इंसानी सभ्यता को देने के लिए कुछ भी सकारात्मक शेष नहीं है। यह भूख, कुपोषण, गरीबी, महँगाई, बेरोज़गारी ही दे सकती है। इसका एक क्रान्तिकारी विकल्प तैयार करना देश के छात्रों-युवाओं और मेहनतकशों का दूरगामी लक्ष्य है, लेकिन उस दूरगामी लक्ष्य को साकार करने की शिक्षा और उसकी तैयारी भी हमें अपनी रोज़मर्रा की जायज़ माँगों पर मौजूदा सरकार और व्यवस्था से लड़कर ही मिलेगी। छात्रों-युवाओं, मेहनतकशों को अपने जिन बुनियादी हक़ों-अधिकारों के लिए लड़ना है उसमें एक प्रमुख माँग 'सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा और सभी को रोज़गार की क़ानूनी गारण्टी' है। इसके लिए लड़कर हम समूची व्यवस्था के परिवर्तन की लड़ाई को भी आगे ले जायेंगे और अपने बुनियादी हक़ों को भी हासिल कर सकेंगे।

रोज़गार के प्रश्न पर हमारी लड़ाई का लक्ष्य सीधा और सरल है: अगर व्यवस्था ने माना था कि ग्रामीण क्षेत्र में नागरिकों को काम का अधिकार मिलना चाहिए (हालाँकि 100 दिन का काम देकर उनके साथ सरकार ने एक भद्दा मज़ाक ही किया है और वह भी वास्तव में कभी-कभार ही मिलता है) तो इसी तर्क से देश के सभी नागरिकों के प्रति व्यवस्था को अपनी यह ज़िम्मेदारी स्वीकारनी चाहिए और हरेक नागरिक के मूलभूत अधिकार के तौर पर रोज़गार गारण्टी के अधिकार को स्वीकारना चाहिए और इसके अनुसार संविधान में संशोधन करना चाहिए। दूसरी बात, इसे अमल में उतारने के लिए 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित करना चाहिए। इस क़ानून के तहत हर काम करने योग्य नागरिक को रोज़गार देना सरकार का उत्तरदायित्व होना चाहिए और रोज़गार न दे पाने पर उसे न्यूनतम रु. 10,000 बेरोज़गारी भत्ता दिया जाना चाहिए।

हमारी प्रमुख माँगें

उपरोक्त चर्चा के आधार पर **भगतसिंह जनअधिकार यात्रा** मोदी सरकार व समस्त राज्य सरकारों से शिक्षा व रोज़गार सम्बन्धी निम्न माँगें करती है:

1. **'हरेक काम करने योग्य नागरिक को पक्का रोज़गार व सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा' के अधिकार को संवैधानिक संशोधन करके मूलभूत अधिकारों में शामिल करो।**

2. शिक्षा के निजीकरण पर तत्काल रोक लगाओ, पूरे देश की शिक्षा-व्यवस्था का राष्ट्रीकरण करो व उसे सभी के लिए समान व निशुल्क बनाओ।

3. प्राइवेट ट्यूशन और कोचिंग सेण्टरों की मनमानी लूट को रोकने के लिए नियमावली बनायी जाये।

4. सरकारी स्कूलों की खस्ताहाल हालत को ठीक किया जाये। सभी स्कूलों में **शिक्षकों के ख़ाली पड़े पद तत्काल भरे जायें** और तय मानकों के अनुसार पढ़ाई की व्यवस्था की जाये। शिक्षा पर व्यय बढ़ाकर जीडीपी का कम से कम 6 प्रतिशत किया जाये।

5. प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा के बढ़ते निजीकरण और बाज़ारीकरण पर रोक लगायी जाये। निजी स्कूलों-कॉलेजों, मेडिकल-डेण्टल, इंजीनियरिंग व मैनेजमेण्ट कॉलेजों में सुविधाएँ और शिक्षकों के वेतन के मानक तय करने के लिए क़ानून बनाया जाये ताकि हर नागरिक की स्तरीय व निशुल्क शिक्षा तक पहुँच हो। उच्चतर शिक्षा में केन्द्रीय व राजकीय विश्वविद्यालयों में ख़ाली सभी पदों पर तत्काल स्थायी शिक्षकों की भर्ती की जाये।

6. जनविरोधी **नयी शिक्षा नीति-2020** को रद्द किया जाये।

7. शिक्षा को शारीरिक श्रम से जोड़ा जाये, सैन्य प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाया जाये, उसे वैज्ञानिक व तार्किक बनाया जाये और उसे पूर्ण रूप से जनवादी और सेक्युलर स्वरूप दिया जाये। हर प्रकार के धार्मिक मिथकीय साहित्य और साम्प्रदायिकता को शिक्षा के पाठ्यक्रमों से तत्काल बाहर किया जाये।

8. जिन पदों पर परीक्षाएँ हो चुकी हैं उनमें पास होने वाले उम्मीदवारों को तत्काल नियुक्तियाँ दी जायें। रिक्तियों की घोषणा से लेकर नियुक्ति पत्र देने की समय सीमा तय करके उसे सख़्ती से लागू किया जाये। परीक्षा परिणाम घोषित होने के छह

माह में नियुक्ति पत्र देना अनिवार्य किया जाये। जिन पदों पर भर्ती के लिए परीक्षाएँ आयोजित नहीं की गयी हैं, उन्हें तत्काल आयोजित किया जाये।

9. सभी राजकीय व केन्द्रीय विभागों में ख़ाली पड़े लाखों पदों को भरने की प्रक्रिया जल्द से जल्द शुरू की जाये।

10. नियमित प्रकृति के कामों में **ठेका प्रथा पर रोक** लगायी जाये, सरकारी विभागों व निजी उपक्रमों में नियमित काम कर रहे सभी कर्मचारियों को तत्काल स्थायी किया जाये और ऐसे सभी ख़ाली पदों पर स्थायी भर्ती की जाये।

11. देश में शहरी और ग्रामीण बेरोज़गारों के पंजीकरण की व्यवस्था की जाये और रोज़गार नहीं मिलने तक कम से कम 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। इसे सुनिश्चित करने के लिए सरकार **'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून (बसनेगा)'** पारित करे। तब तक 'मनरेगा' के तहत साल भर के रोज़गार और काम पर कम-से-कम न्यूनतम मज़दूरी का क़ानूनी प्रावधान किया जाय। केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे क़ानून को पारित किये जाने तक, राज्य सरकारें प्रदेश के स्तर पर ऐसा रोज़गार गारण्टी क़ानून बनायें।

12. बेरोज़गार युवकों से हर वर्ष की जाने वाली हज़ारों करोड़ की कमाई बन्द की जाये। नौकरियों के लिए आवेदन के भारी शुल्कों को ख़त्म कर निशुल्क किया जाये और साक्षात्कार तथा परीक्षा के लिए यात्रा को निःशुल्क किया जाये।

13. देश के विकास हेतु शिक्षा, चिकित्सा, अवरचना निर्माण, आवास आदि की सुविधाओं के विस्तार के लिए नयी रिक्तियाँ निकाली जायें और उन पर भर्तियाँ की जायें।

14. **'अग्निवीर' योजना को तत्काल रद्द किया जाये।**

साथियो, अक्सर हम ख़ुद ही सोच लेते हैं कि सभी को शिक्षा और रोज़गार दिया ही नहीं जा सकता, कि यह सरकार की ज़िम्मेदारी ही नहीं है। दरअसल हमारे दिमाग़ में इस तर्क को कूट-कूट कर बैठा दिया गया है ताकि हम इसे अपना अधिकार समझकर इसकी माँग ही न करें। मगर सच्चाई क्या है? किसी भी लोकतान्त्रिक समाज में भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा पाना हर नागरिक का बुनियादी अधिकार होता है। हमसे कम संसाधनों वाले कई देश अपने नागरिकों को मुफ़्त शिक्षा मुहैया कराते हैं। **सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें चाहिए - काम करने**

योग्य लोग, विकास की सम्भावनाएँ और प्राकृतिक संसाधन। हमारे यहाँ ये तीनों चीज़ें प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। सवाल सरकारों की नीयत का है जो इस बात से तय होती है कि व्यवस्था व सरकारें किन जमातों की नुमाइन्दगी करती हैं: उनकी जो अपनी मेहनत से सुई से लेकर जहाज़ तक सबकुछ बनाते हैं या उनकी जो मेहनतक़शों की मेहनत को लूटकर अपनी तिजोरियाँ भरते हैं और परजीवी जोंकों की तरह देश पर चिपके हुए हैं। **"रोज़गार-विहीन विकास" की बात करने वाली पूँजीपरस्त और जनविरोधी नीतियों को लागू करने में कांग्रेस-भाजपा से लेकर हर रंग के झण्डे वाली सारी चुनावी पार्टियों की आम सहमति है। इन लुटेरी नीतियों को सबसे ज़ोर-शोर से लागू करने वाली भाजपा आज देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सबसे चहेती पार्टी है।** लोग शिक्षा, रोज़गार, महँगाई जैसे असली सवालों पर एकजुट होकर आवाज़ न उठा सकें, इसीलिए भाजपा और संघ परिवार के तमाम संगठन धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के नाम पर तरह-तरह के फ़र्जी भावनात्मक मुद्दे उभाड़कर लोगों को आपस में लड़ाने और बाँटने का काम करते हैं।

लेकिन क्या हम इन हालात को चुपचाप स्वीकार कर लें? क्या हम हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहें? आज देश भर में छात्र-युवा जगह-जगह शिक्षा और रोज़गार से जुड़ी माँगों पर सत्ता से टकरा रहे हैं लेकिन अन्धी-बहरी सरकारें उनकी आवाज़ को अनसुना कर दे रही हैं। ज़रूरत है इन माँगों पर व्यापक तैयारी और एकजुटता के साथ जुझारू संघर्ष छेड़ने की। **भगतसिंह जनअधिकार यात्रा में हम इस माँग को पुरजोर ढंग से उठा रहे हैं। भगतसिंह जनअधिकार यात्रा का मकसद है कि शिक्षा और रोज़गार व अन्य माँगों पर हम एकजुट हों, संगठित हों और संघर्ष करें। हम सभी छात्र-छात्राओं, नौजवानों व जागरूक-इंसाफपसन्द लोगों से अपील करते हैं कि आप सभी इस यात्रा में शामिल हो।**

जीना है तो मरना सीखो--हक़ की ख़ातिर लड़ना सीखो!
बिन हवा न पत्ता हिलता है--बिन लड़े न कुछ भी मिलता है!
भगतसिंह ने दी आवाज़--बदलो बदलो देश-समाज!
इंक़लाब ज़िन्दाबाद!